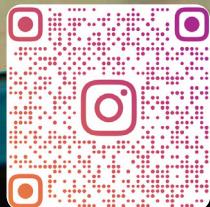


Humari Aawaz

सहयोग राशि ₹ 15

रोज़ी-रोटी हक्क की बातें जो भी मुँह पर लाएंगा

Follow Us On Social Media



महिला दिवस : समानता और स्वतंत्रता की ओर बढ़ता कदम

भारतीय रेलवे: एक विशाल सार्वजनिक संस्थान के सिमटते कदम

यह महाकुंभ है या मृत्युकुंभ

Oliver Twist
The Dark Side of 19th Century England

देश में चल रहे छात आंदोलनों की रिपोर्ट

शहीद-ए-आजम भगत सिंह: संघर्ष से सीख और आज की चुनौतियां

One Year of Struggle, Learning, and Solidarity

Editorial Board

Tripti, Sanjna, Vivek, Sunny, Laxmi

Reach Out: +91-8178134978, samparkaawaz@gmail.com

Address:

First Floor - 40, City Archade , Gaur City-2, Greater Noida West, 201009 Uttar Pradesh



To Support Scan The QR

रोज़ी-रोटी हक्क की बातें जो भी मुँह पर लाएगा

‘रोज़ी-रोटी हक्क की बातें जो भी मुँह पर लाएगा
कोई भी हो निश्चित ही वह कम्युनिस्ट कहलायेगा’

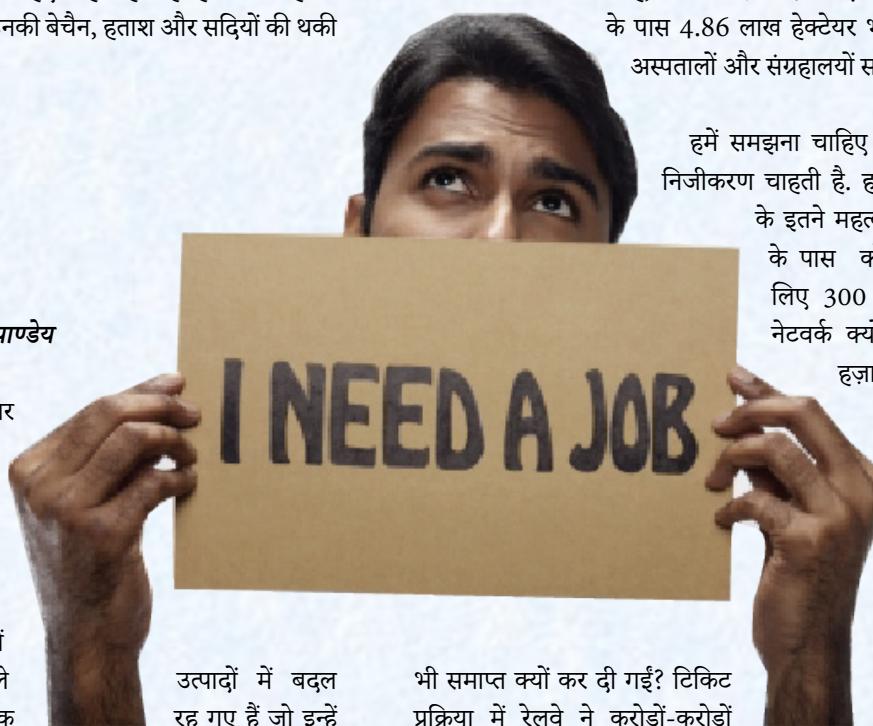
रोज़ी-रोटी यानी बुनियादी रोज़गार, रोटी-कपड़ा, मकान और हक्क यानी गरिमापूर्ण सम्मानजनक जीवन! जीवन जीने का यह सामान्य संवैधानिक अधिकार आज इतना दुर्लभ क्यों है जिसे पाने के लिए हमें सरकार के आगे हाथ फैलाकर माँगना पड़े, सङ्क पर उत्तरकर संघर्ष करना पड़े और यहाँ तक कि अपनी जान गंवानी पड़े फिर भी मनुष्य होने का उसका बुनियादी अधिकार उसे न मिल सके?

सर्वाधिक युवा श्रम-शक्ति से लैस यह देश सार्वजनिक सेवाओं में गहराते भयावह संकट से जूझ रहा है। स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा, जल-आपूर्ति और परिवहन जैसे क्षेत्र व्यवस्था की विफलताओं को साफ़ उजागर करते हैं। जाहिर है कि इसका सबसे ज्यादा असर मजदूर वर्ग, निम्न-मध्यवर्ग और अब तो खाते-पीते मध्यवर्ग पर भी पड़ रहा है। स्वास्थ्य सेवा ढांचागत समस्याओं, चिकित्सकीय कर्मचारियों की कमी और आवश्यक दवाओं तक पहुँच के अभाव से जूझ रही है। कोरोना महामारी को याद करें तो स्वास्थ्य व्यवस्था की पोल खुल जाती है। इसी तरह सार्वजनिक शिक्षा-व्यवस्था खराब गुणवत्ता, शिक्षकों की कमी और विशेष रूप से वंचित समुदाय के विद्यार्थियों में लगातार ड्रॉपआउट से जूझ रही है। साफ़ पेयजल, स्वच्छता और सार्वजनिक परिवहन जैसी बुनियादी सुविधाएं ग्रामीण क्षेत्रों और शहरी झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वाले लोगों के लिए आज भी नदारद हैं। मुम्बई स्थित धारावी की झुग्गियों में रहने वाले लोगों की जीवन-स्थिति देखकर सामान्य व्यक्ति बेचैन हो सकता है और अब तो वह अडानी प्रोजेक्ट का हिस्सा भी है जिस पर जल्द ही बुलडोज़र चलाया जायेगा। यू ट्यूब पर काव्य कर्नाटक की वीडियो रिपोर्ट देखनी चाहिए। यह कहना ही होगा कि वहाँ के लोगों का जीवन जानवरों से भी बदतर है। उनकी बेचैन, हताश और सदियों की थकी आँखें देखिए।

ये आँखें हैं तुम्हारी
या तकलीफ का उमड़ता हुआ समुंदर
इस दुनिया को
जितनी जल्दी हो
बदल देना चाहिए

-गोरख पाण्डेय

नब्बे के दशक से भारत ही नहीं दुनिया भर में उभेरे नवउदारवादी ढाँचे द्वारा राज्य ने थोड़ी-बहुत कल्याणकारी ज़िम्मेदारियों से भी पल्ला झाड़ लिया और बहुत तेज़ी से सार्वजनिक सेवाओं का निजीकरण और व्यावसायीकरण हुआ। स्वास्थ्य और शिक्षा, जिन्हें कभी सार्वजनिक संसाधन के रूप में देखा जाता था, अब मुनाफ़ा कमाने वाले गए हैं, जो आज केवल उन्हीं की पहुँच तक



उत्पादों में बदल रह गए हैं जो इन्हें

खरीद सकता है। सार्वजनिक विद्यालयों को लगभग खत्म कर दिया गया है और मनमाने महँगे निजी स्कूल ‘पब्लिक स्कूल’ कहे जा रहे हैं। सार्वजनिक सेवाएं, जो संसाधनों के पुनर्वितरण और सामाजिक समानता को सुनिश्चित करने का माध्यम होनी चाहिए, उन्हें वित्तीय कटौती और कॉर्पोरेट टैक्स में छूट की मांगों को पूरा करने के लिए जानबूझकर अंडरफंड कर दिया जाता है। संसाधनों का आवंटन राज्य की कॉर्पोरेटपरस्ती की पोल खोल देता है। पूँजीपतियों और अमीरों के लिए भारी सब्सिडी जबकि सार्वजनिक कल्याण अंडरफंड बताया जाता है। मुख्यधारा की मीडिया भला जनता को यह सब क्यों दिखाने लगी! वह तो धर्म का धीमा नशा देने में व्यस्त है।

दूसरी ओर, सार्वजनिक परिवहन में रेलवे का बुनियादी ढाँचा चरमरा गया है। दुर्घटनाओं की संख्या बढ़ती ही जा रही है। कुंभ-2025 सरकार और कॉर्पोरेट का राजनीतिक एजेंडा बन गया है जिसमें यात्रियों की भयानक दुर्दशा और सैकड़ों मौतें हुईं। कुंभ के कारण उत्तर भारत के स्कूलों को कई दिनों तक बंद रखा गया है। यह है यहाँ की शिक्षा-व्यवस्था। दिल्ली रेलवे स्टेशन पर भगदड़ में आधिकारिक रूप से 20 लोगों की जान गई। मुआवजे के रूप में मृतकों के परिजनों को दो दिन के भीतर ही रेलवे बजट से 10 लाख रुपये नकद दिए गए जिससे कुंभ की अव्यवस्था के लिए उनका मूँह बंद हो सके। क्या कभी इतनी जल्दी मुआवज़ा मिला करता है? वह भी नकद? इतना नकद रेलवे के पास आया कैसे? नकद मुआवज़ा तो सरकारी नियम के ही खिलाफ़ है। हाल ही में जलगाँव में रेल में भगदड़ मचने से किंतने ही यात्री चलती ट्रेन से कूद गए। 2023 में राष्ट्रीय अपराधिकर्ड व्यूरो बताता है कि पिछले 10 सालों में रेल दुर्घटनाओं में 2.6 लाख मौतें हुई हैं। भारतीय रेलवे प्रतिदिन लगभग 23 हज़ार रेलों का संचालन करती है, जिसमें 14 हज़ार यात्री ट्रेनें और 9 हज़ार माल गाड़ियाँ शामिल हैं, जिसमें रोज़ 2.4 करोड़ नागरिक यात्रा करते हैं। रेलवे के पास 4.86 लाख हेक्टेयर भूमि और कारखानों, स्कूलों, अस्पतालों और संग्रहालयों सहित कई संपत्तियाँ हैं।

हमें समझना चाहिए कि सरकार क्यों रेलवे का निजीकरण चाहती है। हमें पूछना चाहिए कि भारत के इतने महत्वपूर्ण एसेट रेलवे में अडानी के पास कोयला और माल ढुलाई के लिए 300 किलोमीटर का निजी रेल नेटवर्क क्यों है? आखिर 30 से 40 हज़ार वार्षिक भर्तीयों के बावजूद रेलवे में 3 लाख से अधिक खाली पद क्यों नहीं भरे जा रहे हैं? वरिष्ठ नागरिकों, विद्यार्थियों और पत्रकारों के लिए दी जाने वाली रियायतों सहित अनेक अन्य रियायतें कैसिलेशन की शातिर कमाए हैं बावजूद इसके

रेलवे बुरी तरह से घाटे में क्यों है?

और अब तो 2025 तक अडानी समूह की योजना 25 हवाई अड़ों का अधिग्रहण करने की भी है। सार्वजनिक सेवाओं का संकट पूँजीवाद के तहत शोषण और अलगाव की रेखा साफ़ तौर पर खींच रहा है। मजदूर वर्ग, जो अपने श्रम के माध्यम से समाज की संपदा का निर्माण करता है, वह एक गरिमापूर्ण जीवन के लिए ज़रूरी बुनियादी अधिकारों से भी वंचित है। यह अलगाव केवल आर्थिक ही नहीं है, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक भी है। दुनिया भर में यह संकट गहराया है। सार्वजनिक परिवहन

संकट ने पर्यावरण संकट को भी भयावह बना दिया है। न्यूयॉर्क और लंदन जैसे शहरों में, जेट्रीफिकेशन ने मजदूर वर्ग के समुदायों को शहरी परिधि में विस्थापित कर दिया है, जहां सार्वजनिक परिवहन अक्सर अपर्याप्त हैं या लगभग नहीं हैं। ऐसा क्षेत्रीय अलगाव सामाजिक असमानता को और मजबूत करता है, क्योंकि हाशिए पर रहने वाले समुदाय नौकरी, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच से वंचित रह जाते हैं। अमेरिका में बेघर परिवारों की संख्या

इतनी बढ़ गई है कि सरकार के लिए मुश्किल खड़ी हो गई है।

आर्थिक संकट के चलते ग्रीस में सार्वजनिक परिवहन बुरी तरह बिगड़ गया है। सार्वजनिक परिवहन निजीकरण के कारण ब्रिटेन की हालत और खराब है। 1986 में थैंचर द्वारा लंदन के बाहर बस सेवाओं का निजीकरण और विनियमन किया गया था। खतरनाक और प्रदूषणकारी तमाशे के बाद, निजी ऑपरेटरों ने अनियमित बाज़ार पर कब्ज़ा करने की होड़ लगाई और 70% सेवाएँ बड़े पाँच ऑपरेटरों को मिलीं। नतीजतन स्थानीय एकाधिकार हावी हो गए, जिससे किराया दोगुना हो गया। लंदन के बाहर बस यात्राएँ सालाना चार बिलियन से घटकर दो बिलियन हो गई। अब तो पेट्रोल और डीजल की कीमतें रिकॉर्ड ऊँचाई पर

पहुंच गई हैं। वहाँ बसें जीवन रेखा की तरह हैं, जो स्वास्थ्य सेवाओं, शिक्षा, कार्यस्थल और दुकानों तक पहुँचने का साधन हैं लेकिन वहाँ छह मिलियन लोग एक धंटे की बस सेवा के एक किलोमीटर के दायरे में नहीं रहते हैं। स्टेजोफ की 86 नाइट बसें लिवरपूल शहर के स्मिथडाउन से होते हुए स्पीके तक जाती हैं जो विद्यार्थियों के लिए सस्ती और सुगम थीं, उन्हें खत्म किया जा रहा है लेकिन सच्चाई यह भी है कि सार्वजनिक परिवहन के निजीकरण के खिलाफ दुनिया भर में प्रतिरोध तेज़ी से बढ़ रहे हैं।

हैं। जनमानस तक गुणवत्तापूर्ण मूलभूत स्वास्थ्य, शिक्षा और अन्य आवश्यक सेवाओं तक पहुँचे बिना किसी भी तरह का विकास सम्भव नहीं हो सकता। प्रमुख क्षेत्रों का राष्ट्रीयकरण, संसाधनों पर लोकतांत्रिक नियंत्रण और मजबूत सार्वजनिक प्रणालियों के बिना फिलहाल यह संकट नहीं टाले जा सकते लेकिन हम जानते हैं कि 'यह जनता अमर है' (नवारुण भद्राचार्य)।

साथियों, हम उत्साह से भरे हुए हैं कि युवा आवाज़ की हमारी यह पलिका अपने एक साल पूरा कर रही है। समय की नज़र पकड़ती हुई 'हमारी

'आवाज़' में अपने समय की सभी महत्वपूर्ण चुनौतियों पर लिखा गया है। 'गर हो तोप मुकाबिल तो अखबार निकालो' के ज़ज्जे के साथ शुरू हुई पलिका अनेक उत्तर-चढ़ाव के साथ लगातार विविध विषयों की ओर विकसित हुई। पलिका में न केवल विद्यार्थियों और युवाओं के आंदोलनों पर लिखा गया बल्कि हमारे युवा संपादक साथियों द्वारा पलिका उन आंदोलनों तक पहुंची और उनकी आवाज़ में आवाज़ मिलाई।

साथियों, पूँजीवाद की मार ने हमारी दुनिया को पानी तक के लिए तरसा दिया है। बुनियादी हक्क के लिए ज़द्दोज़हद करती जनता के साथ एकजुटता के लिए हम इस अंक को सार्वजनिक सेवाओं के संकट पर केंद्रित कर रहे हैं। इन्हीं महीनों में हमारे नायक भगतसिंह का जन्मदिन और काम के धंटे, उचित मजदूरी व बाल-श्रम के खिलाफ मजदूर महिलाओं के संघर्ष से प्राप्त अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस आता है। इन सभी विषयों को समेटता यह अंक आप तक पहुँचा है। आपकी प्रतिक्रिया हमारे लिए ज़रूरी है।

— संपादक मंडल

भारत में साफ़ हवा-पानी तक को गरीब से दूर कर दिया गया है। कई शहरों में जल आपूर्ति के निजीकरण से लागत आसमान छू रहा है, जिससे निम्न आय वाले परिवारों को साफ़ पीने का पानी तक ठीक से नहीं मिल पा रहा। बोतल बंद पानी सामान्य गरीब व्यक्ति कैसे पी सकता है। इन स्थितियों से निबटने के लिए आम जनमानस को आगे आना चाहिए और विगत सालों में ऐसा हुआ भी है फिर भी यह नाकाफ़ी है।

सार्वजनिक सेवाओं के निजीकरण के खिलाफ़ कई संघर्ष हुए हैं। दिल्ली में जल निजीकरण के खिलाफ़ विरोध प्रदर्शन और बेहतर मजदूरी और कामकाज की बेहतर परिस्थितियों की मांग करने वाले स्वास्थ्यकर्मियों ने हड्डताल की। ये आंदोलन जनता की शक्ति और एकजुटता का उदाहरण

महिला दिवस : समानता और स्वतंत्रता की ओर बढ़ता कदम

क्लारा जेटकिन एक समाजवादी चिंतक और महिला अधिकारों की समर्थक थीं, जिन्होंने अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस की संकल्पना दी और फासीवाद के खिलाफ मजदूर वर्ग को संगठित करने की वकालत की। उन्होंने अधिकारों के ऐतिहासिक संघर्ष को याद करते हुए आज भी महिलाओं को अपने हक के लिए सड़कों पर उतरना होगा, क्योंकि बिना संघर्ष के कोई बदलाव संभव नहीं।

समाजवादी चिंतक क्लारा जेटकिन महिला अधिकारों की समर्थक और राजनीतिक कार्यकर्ता थीं। उनका जन्म 5 जुलाई 1857 को जर्मनी के विदेराऊ (Wiederau) में हुआ था। क्लारा ने अपने जीवन को महिलाओं के अधिकारों और समाजवादी आंदोलनों को समर्पित किया। उन्होंने सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी ऑफ जर्मनी (SPD) और बाद में कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ जर्मनी (KPD) में भी सक्रिय भूमिका निभाई। उनका मानना था कि महिलाओं की मुक्ति का रास्ता समाजवाद से होकर जाता है। क्लारा ने अपने जीवन के अंतिम वर्षों में फासीवाद पर प्रहार किया। वे आंदोलनों में उतरीं और कई लेख लिखे और प्रस्तावित किया कि सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन के लिए मजदूर वर्ग को एकजुट होना चाहिए और कहा कि फासीवाद मजदूर वर्ग और महिलाओं के अधिकारों के लिए बेहद ख़तरनाक है; समाजवादी और लोकतालिक मूल्यों के लिए ख़तरनाक तो है ही। क्लारा ने लिखा कि फासीवाद पूँजीपतियों और बड़े उद्योगपतियों के हितों की रक्षा करता है और उसके बरक्स मजदूर वर्ग और गरीब तबकों के अधिकारों को कुचलता है। उन्होंने इसके खिलाफ मजदूरों और महिलाओं को संगठित करने का प्रयास किया। क्लारा ने तर्क दिया कि फासीवादी शासन महिलाओं को उनके पारंपरिक भूमिकाओं में सीमित कर देता है और उनकी राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता को नष्ट कर देता है। उनका विचार था कि केवल एक संगठित और जागरूक मजदूर वर्ग ही फासीवाद का प्रभावी ढंग से सामना कर सकता है।

आज हमारे देश में ही नहीं दुनिया भर फासीवाद का उभार हुआ है। यह संकट यूँ ही नहीं टलने वाला। क्लारा के ऐतिहासिक लेखों को समझकर हमें अपनी भूमिका तय करनी चाहिए।

अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस कामगारों के आंदोलन से ही निकला था। 1908 में, जब करीब पंद्रह हजार महिलाओं ने न्यूयॉर्क शहर में एक परेड निकाली, जहां उनकी मांग थी कि महिलाओं के काम के घंटे को कम किया जाये, उन्हें अच्छी तन्त्वाह मिले तथा

उन्हें पुरुषों के समान ही वोट डालने का भी अधिकार मिले। एक साल बाद, अमरीका की सोशलिस्ट पार्टी ने पहला राष्ट्रीय महिला दिवस मनाने का एलान किया, इसे अंतर्राष्ट्रीय बनाने का ख़्याल सबसे पहले क्लारा जेटकिन के ज़हन में ही आया था।

उन्होंने 1910 में डेनमार्क की राजधानी कोपेनहेंगन में कामकाजी महिलाओं के अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में महिला दिवस मनाने का सुझाव दिया।

उस सम्मेलन में 17 देशों से आई 100 महिलाएं शामिल थीं और वो एकमत से क्लारा के इस सुझाव पर सहमत हो गईं। पहला अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस 1911 में ऑस्ट्रिया, डेनमार्क, जर्मनी और स्विटज़रलैंड में मनाया गया। हालांकि उसे औपचारिक मान्यता 1975 में उस वक्त मिली, जब संयुक्त राष्ट्र ने भी ये जश्न मनाना शुरू कर दिया। संयुक्त राष्ट्र ने इसके लिए पहली थीम 1996 में चुनी थी, जिसका नाम 'अतीत का जश्न और भविष्य की योजना बनाना' था।

रूसी क्रांति और महिलाओं की भूमिका

1914 में प्रथम विश्व युद्ध शुरू हुआ, जिसमें रूस भी शामिल था। युद्ध ने रूस की अर्थव्यवस्था को गंभीर रूप से प्रभावित किया। किसानों को युद्ध में उनकी मर्जी के खिलाफ भेजा जा

रहा था जिससे कि उत्पादन कम हो गया। जार निकोलस द्वितीय की सरकार खाद्य की पूर्ति सही ढंग से नहीं कर पा रही थी जिससे भुखमरी और महंगाई चरम पर पहुँच गई। इन घटनाओं के विरोध में रूस की



महिलाओं ने “रोटी और अमन” की माँग करते हुए प्रदर्शन किया जिससे उनका स्पष्ट संदेश था कि वे भूख और युद्ध से मुक्ति चाहती हैं। महिलाओं ने युद्ध समाप्त करने, रोजगार के अवसर बढ़ाने और राजशाही के अंत की मांग की। महिलाओं के नेतृत्व में यह विरोध जल्द ही एक व्यापक हड्डियाल में बदल गया जिसमें पुरुष, मजदूर और सैनिक तक शामिल हुए। जार निकोलस द्वितीय की हुक्मत के खिलाफ सभी ने एकजुट हो कर विरोध किया। यह फरवरी क्रांति की शुरुआत थी, जिसने जारशाही को उखाड़ फेंका। इसके दबाव में आ कर जार निकोलस द्वितीय को अपने पद से हटना पड़ा और रूस में एक अस्थायी सरकार बनी, जिसमें महिलाओं को वोट डालने का अधिकार दिया गया।

महिला अधिकारों के लिए संघर्ष और उनकी उपलब्धियाँ

महिलाओं का संघर्ष केवल मतदान के अधिकार तक सीमित नहीं था, बल्कि यह समान वेतन, बेहतर कार्य परिस्थितियाँ, शिक्षा, रोजगार, और प्रजनन स्वतंत्रता जैसे कई मुद्दों से जुड़ा हुआ था। जब महिलाएं 20वीं सदी की शुरुआत में श्रम शक्ति में बड़ी संख्या में शामिल हुईं, तो श्रमिक अधिकारों के लिए संघर्ष नारीवादी आंदोलन का अभिन्न हिस्सा बन गया। औद्योगिक क्रांति के बाद महिलाओं को वस्त्र, निर्माण और घरेलू सेवा जैसे क्षेत्रों में काम मिलना शुरू हुआ। महिलाएं अक्सर उद्योगों जैसे वस्त्र, निर्माण और घरेलू सेवा में कम वेतन वाली कठिन परिस्थितियों वाली नौकरियों में फंसी होती परिणामस्वरूप बेहतर कार्य परिस्थितियों, समान वेतन और यूनियन बनाने के अधिकार के लिए महिलाओं ने संघर्ष करना आरंभ किया।

20वीं सदी के मध्य में, महिलाओं के अधिकारों के लिए और अधिक प्रगति देखने को मिली, जैसे कि 1960 और 1970 के दशकों का नारीवादी आंदोलन। पश्चिम में, महिलाएं शिक्षा, रोजगार और प्रजनन स्वतंत्रता के अधिकार की मांग कर रही थीं। 1963 में बेट्टी फ्रीडन की The Feminine Mystique के प्रकाशन ने चेतना जागरण की एक लहर शुरू की, जिसके परिणामस्वरूप अमेरिकी महिला संगठन “नेशनल ऑर्गनाइजेशन फॉर वूमन” (NOW) की स्थापना हुई। वैश्विक संदर्भ में, लैटिन अमेरिका, अफ्रीका और एशिया जैसे स्थानों पर भी नारीवादी आंदोलन सक्रिय हो रहे थे, जहां महिलाएं राजनीतिक प्रतिनिधित्व, बेहतर स्वास्थ्य देखभाल और शिक्षा के अधिकार की मांग कर रही थीं।

नारीवाद की पहली लहर

नारीवाद की पहली लहर की शुरुआत अमेरिका तथा यूनाइटेड किंगडम में 19वीं सदी में हुई। उनका मुख्य उद्देश्य कानूनी अधिकारों और मतदान के अधिकार को प्राप्त करना था। 1848 का सेनेका फॉल्स कन्वेंशन अमेरिकी प्रथम लहर की शुरुआत का प्रतीक है। यह अमेरिका में आयोजित पहला महिला अधिकार सम्मेलन था। भारत में भी नारीवाद की पहली

Feminism), ट्रांसफेमिनिज्म और उत्तर- आधुनिक नारीवाद। जूडिथ बटलर को तीसरी लहर का केंद्रीय व्यक्तित्व माना जाता है, क्योंकि वह लिंग और लिंग के बीच भेदभाव को नहीं मानती, तथा ट्रांस अधिकारों के समर्थन को मजबूत करती है। तीसरी लहर के दौरान ही किम्बले क्रेनशॉ का अन्तर्विभाजकता का सिद्धांत विकसित हुआ, जिससे उत्पीड़न की विभिन्न प्रणालियों

जब महिलाएं 20वीं सदी की शुरुआत में श्रम शक्ति में बड़ी संख्या में शामिल हुईं, तो श्रमिक अधिकारों के लिए संघर्ष नारीवादी आंदोलन का अभिन्न हिस्सा बन गया।

लहर का स्वरूप महिलाओं की सामाजिक और शैक्षिक उन्नति के रूप में सामने आया। राजा राम मोहन राय ने सती प्रथा के उन्मूलन के लिए संघर्ष किया। ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने विधवा पुनर्विवाह पर जोर दिया। ज्योतिषा फुले और सावित्रीबाई फुले ने दलित स्त्रियों की शिक्षा के लिए स्कूल स्थापित किया। कुछ इस प्रकार नारीवाद की पहली लहर पश्चिम के साथ-साथ भारत की महिलाओं के लिए भी उपयोगी रहा। यह लहर महिलाओं के लिए स्वर उठाने की पहली सीढ़ी थी, जहां उन्होंने पितृसृतात्मक व्यवस्था को पहली बार खुलकर चुनौती दी।

नारीवाद की दूसरी लहर

नारीवाद की दूसरी लहर 1963 में शुरू हुई, जो कि बेट्टी फ्रीडन की ‘द फेमिनिन मिस्टिक’ के प्रकाशन से प्रेरित मानी जाती है जो कहता है कि महिलाओं का काम सिर्फ विवाह या घरेलू काम नहीं है जो “Personal is Political” के नारे से जुड़ता है। आगे महिलाओं को पति की मंजूरी के बिना स्वयं का बैंक खाता खोलने का अधिकार दिलाने के लिए लड़ाई लड़ी तथा घरेलू हिंसा और यौन उत्पीड़न की निंदा की। यौन हिंसा इस आंदोलन का केन्द्रीय विषय था। यह लहर महिलाओं के लिए सिर्फ कानूनी अधिकारों से आगे बढ़कर उनके व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में समानता की माँग का प्रतीक थी।

नारीवाद की तीसरी लहर

तीसरी लहर 1990 के दशक में शुरू हुई, जिसके उभार में 1991 का अनीता हिल मामला था। अफ्रीकी-अमेरिकी कानून की प्रोफेसर अनीता हिल ने सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश पद के लिए मनोनीत क्लरेन्स थॉमस द्वारा यौन उत्पीड़न का सामना करने के बारे में गवाही दी, जो कार्यस्थल पर उत्पीड़न पर बहस को रखता है। इस लहर के दौरान नारीवादी विचारधारा की नई धाराएं उभरी, जैसे कि अन्तर्विभाजकता (Intersectional, सेक्स सकारात्मकता, पारिस्थितिक नारीवाद (Eco

के अन्तर्विभाजक संबंधों की नई समझ विकसित हुई। यह लहर व्यक्तिगत सशक्तिकरण की भावना के साथ सामाजिक न्याय के व्यापक मुद्दों को जोड़ती है क्योंकि इसी लहर में अधेत महिलाओं के हक्कों पर बात शुरू हुई। अब तो जो नारीवाद समाज के ऊपरी तबके तक सीमित था वह काफ़ी व्यापक हो गया।

स्त्रीवाद आज तीसरी लहर से आगे बढ़कर MeToo आंदोलन और अधिकारों के आंदोलनों से जुड़ गया है। इस यात्रा के बाद भी स्त्रियों पर हमलों की कोई कमी नहीं हुई है। अमेरिका में स्त्रियां अभी तक गर्भपात के अधिकार के लिए लड़ रही हैं। फ्रांस जैसे देश में स्त्रियों के लिए मताधिकार 1945 में मिलता है। भारत में बलात्कार की घटनाओं में कोई कमी नहीं हो रही। अभी आज जी कर अस्पताल की महिला डॉक्टर का बर्बर बलात्कार पर देश एकजुट तो हुआ लेकिन ऐसी न जाने कितनी घटनाएं अनदेखी रह जाती हैं। पूँजी, धर्म और सत्ता का गठजोड़ अपराध को शह देता है। कुभी में नहाने वाली स्त्रियों की तस्वीरें और वीडियो इंटरनेट पर खरीदे-बेचे जा रहे हैं। बिलकिस बानो के बलात्कारियों का स्वागत फूल मालाओं से किया गया। मणिपुर में महिलाओं को सरेआम नगर घुमाया गया। शाहीन बाग की औरतों को बिकने वाली औरतें कहा गया।

स्त्री अधिकार के लिए अपने ऐतिहासिक आंदोलन को याद करते हुए आज हमें भी अपने हक्क-हुक्कूक के लिए सड़क पर आना होगा। बिना संघर्ष के इतिहास में भी कुछ प्राप्त नहीं हुआ है न आगे होगा। मजाज़ कहते ही हैं:

तेरे माथे पे ये आँचल बहुत ही ख़ूब है लेकिन
तू इस आँचल से इक परचम बना लेती तो अच्छा था।

— संजना

भारतीय रेलवे : एक विशाल सार्वजनिक संस्थान के सिमटते कदम

आर्थिक और प्रबंधन संकट

भारतीय रेलवे, जो देश की आर्थिक और सामाजिक जीवनरेखा है, आज गंभीर वित्तीय और संरचनात्मक चुनौतियों का सामना कर रही है। यह संस्था, जो प्रतिदिन लाखों लोगों को परिवहन सेवा प्रदान करती है, अपने संसाधनों के अनुचित प्रबंधन, निजीकरण के दबाव और सुरक्षा व रखरखाव में गंभीर चूक के कारण संकट में है। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (CAG) की हालिया रिपोर्ट के अनुसार भारतीय रेलवे को ₹2,604 करोड़ के वित्तीय नुकसान का सामना करना पड़ रहा है, जिसमें अनुबंधों के अनुचित आवंटन, ऋण के कुप्रबंधन और जीएसटी वसूली की कमियों जैसी वित्तीय अनियमितताएँ शामिल हैं।

निजीकरण की ओर बढ़ते कदम

सरकार ने रेलवे के आधुनिकीकरण और निजी निवेश को बढ़ावा देने के लिए कई कदम उठाए हैं। सार्वजनिक-निजी भागीदारी (PPP) मॉडल के तहत 1 जुलाई 2020 को 109 उत्पत्ति-गंतव्य मार्गों पर यात्री ट्रेनों के संचालन हेतु निजी निवेश को आमंत्रित किया गया। इसका उद्देश्य विश्वस्तरीय सुविधाओं से लैस आधुनिक ट्रेनों का संचालन सुनिश्चित करना था। हालांकि, निजीकरण का यह प्रयास रेलवे के मूलभूत मुद्दों को हल करने में कितना प्रभावी रहा है, इस पर अब भी सवाल बना रहा है। निजी कंपनियों की भागीदारी से सेवा की गुणवत्ता और किरायों में बढ़ोतरी के बीच संतुलन बनाए रखना एक बड़ी चुनौती साबित हो रहा है।

रेलवे सुरक्षा पर सवाल

रेलवे की सुरक्षा स्थिति भी चिंताजनक बनी हुई है। 2023 में उड़ीसा में हुई एक भयावह रेल दुर्घटना, जो सिग्नलिंग प्रणाली में गलती के कारण हुई थी, रेलवे के सुरक्षा प्रबंधन में कमियों को उजागर करती है। CAG की 2022 की रिपोर्ट में स्पष्ट किया गया कि रेलवे सुरक्षा विभाग में स्टाफ की भारी कमी है, जिससे रखरखाव कार्य प्रभावित हो रहा है। सुरक्षा सुधारों के लिए आवंटित बजट अन्य प्रशासनिक जरूरतों में स्थानांतरित कर दिया गया, जिससे संरचनात्मक सुधार ठप पड़ गए।

स्टेशनों का मेकअप और बुनियादी सेवाओं की अनदेखी

जहां स्टेशनों के पुनर्निवास के लिए निजी भागीदारी को प्रोत्साहित किया जा रहा है, वहां बुनियादी सेवाओं में सुधार की दिशा में सही प्रयास नहीं दिखते। 2021 में भारतीय रेलवे स्टेशन विकास निगम (IRSDC) को भंग कर दिया गया और इसकी जिम्मेदारी संबंधित ज़ोनल रेलवे को सौंप दी गई, जिससे इस दिशा में किए जा रहे कार्यों की नियंत्रता पर संदेह बना हुआ है।

नौकरियों में कटौती और युवाओं की चिंताएँ

भारतीय रेलवे, एक सार्वजनिक संस्था के रूप में, भारतीय मज़दूर वर्ग के लिए स्थायी नौकरियों का एक महत्वपूर्ण स्रोत रहा है। रेलवे भर्ती बोर्ड (RRB) और अन्य परीक्षाओं के माध्यम से हजारों युवाओं को स्थायी रोजगार प्रदान किया जाता था, जिससे देश में सामाजिक-आर्थिक स्थिरता बनी रहती थी। लेकिन वर्तमान सरकार की निजीकरण-समर्थक नीतियाँ इस व्यवस्था को बदल रही हैं।

31 मार्च 2024 तक, रेलवे में लगभग 12.52 लाख कर्मचारी कार्यरत थे, लेकिन 2014 से 2024 के बीच कुल 5 लाख भर्तियों के बावजूद कर्मचारियों की संख्या 2 लाख कम हो गई (स्रोत: Wikipedia, Business Standard)। 2014 में रेलवे के कर्मचारियों की संख्या 14.52 लाख थी, जो अब घटकर 12.52 लाख रह गई है। इसका मतलब है कि इस दौरान 7 लाख कर्मचारी सेवानिवृत्त हुए या रेलवे छोड़ चुके हैं। ऐसे में, युवाओं को यह समझना होगा कि

निजीकरण की यह लहर किस दिशा में जा रही है और इसका उनके भविष्य पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

भर्ती प्रक्रिया पर संदेह और बढ़ता अस्थायी रोजगार

सरकारी नौकरियों में भर्ती प्रक्रिया की विश्वसनीयता भी लगातार संदेह के घेरे में आ रही है। हाल ही में बिहार लोक सेवा आयोग (BPSE) परीक्षा में हुई अनियमितताओं ने दिखाया कि किस प्रकार सरकारी भर्ती प्रक्रियाएँ ध्वस्त होती जा रही हैं। पेपर लीक, परीक्षा पैटर्न में हेरफेर, और भ्रष्टाचार ने देश के लाखों युवाओं की उम्मीदों को झकझोर दिया है। जब सरकारी नौकरियों की चयन प्रक्रिया ही निष्पक्ष नहीं रहेगी, तो योग्य उम्मीदवारों को अवसर मिलना मुश्किल हो जाएगा। इससे निजीकरण को और अधिक बढ़ावा मिलेगा, क्योंकि जब सरकारी क्षेत्र में स्थायी नौकरियों की व्यवस्था ध्वस्त होती दिखेगी, तो मज़दूर वर्ग को मजबूरी में अस्थायी और अनुबंध आधारित नौकरियों की ओर धकेला जाएगा।

यात्रियों की सुविधाओं में गिरावट

रेलवे में चिकित्सा सुविधाओं की कमी यात्रियों के लिए भी एक गंभीर समस्या बनती जा रही है। हाल ही में एक ट्रेन यात्रा के दौरान (जिसमें मैं सुखद शामिल था और घटना का साक्षी रहा) एक परिवार अपने बीमार बच्चे को चिकित्सा सहायता न मिलने के कारण खो बैठा। हमारे तमाम प्रयासों और अधिकारियों को दी गई सूचनाओं के बावजूद रेलवे कोई त्वरित

सहायता उपलब्ध नहीं करा सका। यह घटना बताती है कि रेलवे जैसी सार्वजनिक सेवा में बुनियादी आपातकालीन सुविधाओं का अभाव है।

हवाई यात्रा बनाम रेलवे असमानता का सवाल

इन सभी मुद्दों के बीच, यह भी महत्वपूर्ण है कि भारत में हवाई यात्रा के प्रसार और रेलवे में अपेक्षाकृत धीमी



प्रगति के बीच बढ़ती असमानता को समझा जाए। जहाँ पिछले एक दशक में हवाई अड्डों की संख्या 74 से बढ़कर 159 हो गई है, वहीं रेलवे अभी भी धीमी गति से अपनी संरचना में सुधार कर रहा है। बढ़ती महंगाई और बेरोजगारी के कारण एक बड़े वर्ग के लिए हवाई यात्रा सुलभ नहीं है, ऐसे में रेलवे की स्थिति सुधारने की ज़रूरत और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है।

भारतीय रेलवे, हाल के वर्षों में निजीकरण की ओर बढ़ते हुए कई नीतिगत बदलावों से गुजरा है, लेकिन ये बदलाव आम जनता और श्रमिक वर्ग के लिए असुरक्षा और असमानता बढ़ाने वाले साबित हुए हैं। विकल्प योजना, ट्रैवल एश्योर्ड कॉर्पोरेट थर्ड पार्टी स्कीम, डायनामिक किराया प्रणाली और टिकट रद्दीकरण से हुए ₹6,112 करोड़ की कमाई ने यह स्पष्ट कर दिया है कि रेलवे अब मुनाफे को प्राथमिकता दे रहा है, न कि यात्रियों की सुविधा को। डायनामिक किराये के कारण त्योहारों और पीक सीजन में टिकट की कीमतें 3-4 गुना बढ़ जाती हैं, जिससे आम यात्री के लिए यात्रा करना कठिन हो गया है, जबकि कॉर्पोरेट यात्रियों को प्राथमिकता दी जा रही है। पहले सार्वजनिक रेलवे निश्चित किराए और

भारतीय रेलवे में निजी क्षेत्र की भागीदारी (2024)

गति शक्ति मल्टी-मोडल कार्गो टर्मिनल (GCTs)

- निजी कंपनियाँ कार्गो टर्मिनल स्थापित कर रही हैं।
- 91 टर्मिनल चालू, 354 स्थानों की पहचान (327 गैर-रेलवे भूमि पर)।

स्टेशन पुनर्विकास (PPP मॉडल)

- 1,337 स्टेशन पुनर्विकास के लिए चुने गए, 1,198 स्टेशनों का कार्य निजी हाथों में।
- बुलेट ट्रेन (मुंबई-अहमदाबाद)
- JICA फंडिंग, निजी कंपनियों को ठेके (वायाडकट, सुरंग, स्टेशन निर्माण)।

मालवाहक और आर्थिक गलियारे

- तीन आर्थिक गलियारे (₹88,875 करोड़, 4,107 किमी)
- ऊर्जा, खनिज और सीमेंट गलियारा – ₹57,313 करोड़, 2,911 किमी
- उच्च यातायात धनत्रय मार्ग – ₹11,280 करोड़, 830 किमी
- रेल सागर गलियारा – ₹20,282 करोड़, 366 किमी
- निजी लॉजिस्टिक्स कंपनियाँ और उद्योग शामिल।

नवीकरणीय ऊर्जा (सौर/पवन)

- 487 मेगावाट सौर, 103 मेगावाट पवन ऊर्जा संयंत्र चालू।
- डिजिटल एवं कार्यबल प्रबंधन
- ई-टिकिटिंग, QR भुगतान – निजी फिनेटेक कंपनियाँ।
- 'कवच' सुरक्षा प्रणाली – निजी OEM कंपनियों को ठेके।

निजी ट्रेन संचालन

- वंदे भारत और नमो भारत – निजी निर्माण।
- तेजस एक्सप्रेस, भारत गौरव ट्रेनें – लीज मॉडल पर निजी संचालन।

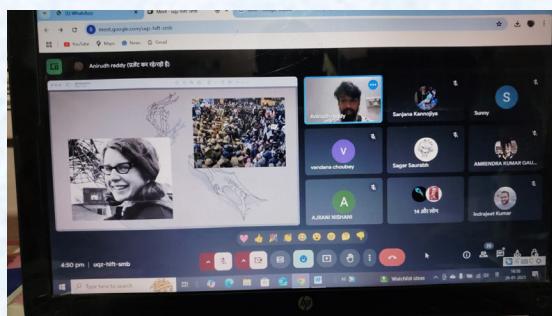
सुविधाजनक रिफ़ॅंड नीतियों के साथ जनता को राहत देता था, लेकिन अब एयरलाइन मॉडल अपनाकर यात्रियों से अधिक वसूली की जा रही है। 2019 से अब तक निजीकरण की दिशा में उठाए गए कदमों ने साबित किया है कि सार्वजनिक क्षेत्र को निजी हाथों में देने से न तो सेवाएँ बेहतर हुईं, न ही रेलवे कुशल बना, बल्कि टिकट महंगे हुए और सुविधाएँ प्रभावित हुईं। रेलवे को निजी हाथों में देने के बावजूद संचालन का तरीका वही रहता है और प्रदर्शन खराब होता है, तो यह इस बात का प्रमाण है कि समस्या निजीकरण से हल नहीं होती, बल्कि सही समाधान बेहतर प्रबंधन, पारदर्शी नीतियाँ और जनता के हितों को प्राथमिकता देना है, न कि रेलवे जैसी बड़ी सार्वजनिक सेवा को बाजार की ताकतों के हवाले कर देना।

आलेख में जो आंकड़े बताए गए हैं वे आंकड़े नहीं बल्कि हम सब लगातार इन स्थितियों से रोज़ जूझ रहे हैं। पाठक खुद सोचें टिकिट कराने, प्रतीक्षा सूची और कैंसल करने तक क्या एक व्यक्ति यातना और आर्थिक दबाव से नहीं गुजरता? आज रेल में सफलता पूर्वक कंफर्म टिकट हो जाना मानों कोई जीत हो जाने जैसा हो गया है जिसका खामियाजा केवल निम्न वर्ग नहीं बल्कि अच्छा खासा मध्यवर्ग भी

भुगत रहा है।

— हर्षित

Webinar Insights: Humari Aawaz's Fourth Edition



On January 26, 2025, Humari Awaaz hosted a thought-provoking webinar, delving into critical social, political, and environmental issues. Lakshmi Kumar examined the deep-rooted causes of society's treatment of women, while Shivani analyzed Muktibodh's Pakshi aur Deemak, drawing parallels to contemporary politics. Ritu highlighted pressing issues of violence against women and possible solutions, while Tripti explored the struggles of the working class in Dickens' literature. Sushma

shed light on the deforestation crisis in Hasdeo Aranya, discussing the broader environmental movement. Concluding on a sharp yet humorous note, Sagar dissected government promises and the upcoming 2024 elections.

The session ended with an engaging Q&A, reaffirming the team's commitment to fostering critical discourse. Humari Awaaz will continue to organize such discussions, amplifying voices that challenge and inspire.

यह महाकुंभ है या मृत्युकुंभ

मैं 16 फरवरी, 2025 को फरक्का एक्सप्रेस ट्रेन में बैठकर बनारस में कृष्णा सोबती पर आयोजित एक अंतरराष्ट्रीय सेमिनार में भाग लेने जा रहा था। पटना जंक्शन पर गाड़ी में बहुत मुश्किल से मुझे ऊपर की सीट पर बैठने के लिए एक कोना मिल गया, लेकिन मेरे ऊपर तीन-चार लोगों का सामान लाद दिया गया। अत्यधिक भीड़ के कारण बच्चों और महिलाओं की हालत बहुत खराब हो गई थी। जगह के लिए लोग एक-दूसरे से लड़-झगड़ रहे थे। बाथरूम जाने-आने वालों को काफी संघर्ष करना पड़ रहा था। बाथरूम में पानी भी नहीं था और उससे बहुत गंदी बदबू आ रही थी, फिर भी लोग वहां पर खड़े थे। कुछ लोगों ने एक गेट बंद कर दिया था, जिसके कारण स्टेशन पर बाहर से चढ़ने वाले लोग गुस्सा हो रहे थे और गेट थपथथा रहे थे। सभी बोगियों में लोगों की हालत खराब थी। किसी के रिजर्वेशन सीट का कोई महत्व नहीं था। कई लोगों की ट्रेन छूट चुकी थी और कुछ लोग लम्बे इंतजार के बाद अंततः भीड़ भेरे ट्रेन में ही चढ़ने के लिए बाध्य हो गये थे। लोग जबर्दस्ती दूसरों की सीट पर बैठे हुए थे। रेलवे पुलिस या टीटी का कहीं नामोनिशान नहीं था। मैं यह सोचकर परेशान हो रहा था कि इतनी खराब स्थिति में भी लोग प्रयागराज जाने का मोह क्यों नहीं त्याग पा रहे हैं! कुंभ जानेवाले 70% लोग मजदूर वर्ग से ही थे। मैं सोच रहा था कि दिन-रात मेहनत-मजदूरी करने वाला यह मजदूर वर्ग ऐसा कौन-सा पाप करता है, जिसके कारण ये इतना कष्ट सहकर प्रयागराज जाना चाह रहे हैं। एक दिन पहले ही दिल्ली रेलवे स्टेशन पर भगदड़ हुई थी और लगभग 20 लोग मर गये थे। इससे पहले 29 जनवरी को इलाहाबाद में संगम और उसके आस-पास भगदड़ हुई थी और उसमें भी लगभग 500 लोग मरे होंगे, लेकिन सरकार

ने अधिकांश लाशों को रातों-रात गायब कर दिया और प्रत्यक्षर्दर्शियों के चिल्ला-चिल्ला कर कहते रहने और विपक्षी नेताओं की आलोचनाओं के बावजूद मात्र 30 लोगों के मरने की पुष्टि की।

19 फरवरी को बनारस से आते समय भी वही स्थिति थी। मेरे रिजर्वेशन सीट पर कोई और बैठा था और मैं ऊपर कोने में दबा हुआ था। ठीक से पैर पसारने और बैठने की जगह भी नहीं थी, ऊपर भी मेरे साथ चार लोग बैठे थे जिनमें दो महिलाएं थीं। एक पुरुष यह कहकर अन्य रिजर्वेशन सीट वाले यात्री से लड़ रहा था कि हमने भी टिकट कटाया है और हम भी यहीं बैठेंगे। उसके पास जनरल टिकट था, लेकिन जबर्दस्ती रिजर्वेशन सीट पर अपने परिवार के साथ बैठा था। मेरे पीछे वाले सीट पर कुछ नैजवान बैठे थे और बीच-बीच में ‘जय श्री राम’ का नारा लगा रहे थे। इसके साथ ही वे आपस में मां-बहन की गंदी-गंदी गालियां देते हुए बातचीत और हँसी-मजाक कर रहे थे। मैंने उन्हें टोकना चाहा, लेकिन यह सोचकर चुप रह गया कि पता नहीं उधर से क्या प्रतिक्रिया आएगी, क्योंकि वे लंपट किस्स के लड़के थे। मेरे साथ और सामने बैठी स्त्रियां भी शायद उन्हें मन-ही-मन गालियां दे रही थीं, लेकिन बोलने की हिम्मत किसी में नहीं थी। सभी कष्ट सहकर भी अपने गंतव्य तक पहुंचना चाहते थे।

कुंभ मेले के कारण लोग इतने बड़े पैमाने पर जान गवां रहे हैं, घायल हो रहे हैं, खो जा रहे हैं और तकलीफ उठा रहे हैं, फिर भी यह भीड़ क्यों नहीं रुक रही है? इसके पीछे की सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक कारणों को समझना जरूरी है। कुंभ के बारे में यह कहा जाता है कि प्रत्येक 6 साल में अद्वकुंभ, 12 साल में पूर्णकुंभ और 144 साल में महाकुंभ का

आयोजन होता है। यदि 2025 ई. का यह कुंभ 144 साल बाद लगा है, तो इससे पहले यह महाकुंभ 1881 ई. में लगना चाहिए था, लेकिन इसका कोई प्रमाण मौजूद नहीं है। ‘प्रयागराज और कुंभ’ नामक किताब में 1820 ई. में प्रथम कुंभ का उल्लेख हुआ है, जो हरिद्वार में लगा था। फिर यह 1844 ई. और 1855 ई. में आयोजित हुआ। इसके बाद अंग्रेजों ने इस पर प्रतिबंध लगा दिया था। बाद में भारतीय हिंदू नेताओं के प्रयास से 1915 ई. में फिर से यह मेला लगना शुरू हुआ। इसके बाद कुछ वर्षों के अंतराल में यह मेला लगता रहा, लेकिन इसकी बारंबारता निश्चित नहीं थी। 3 फरवरी, 1954 ई. के पूर्णकुंभ को भी 144 साल के बाद आयोजित होने वाला ‘महाकुंभ’ कहा गया था। इस महाकुंभ में 800 से अधिक लोग मरे थे। इसी तरह से 1977 ई. एवं 2001 ई. के पूर्णकुंभ को भी ‘महाकुंभ’ कहा गया था और इसके 144 साल के बाद आयोजित होने की अफवाह फैलाई गई थी। इस किताब में 2013 ई. में प्रयागराज में आयोजित कुंभ को ‘महाकुंभ’ कहा गया है, लेकिन इसके बारे में अफवाह फैलाई गयी थी कि यह 147 साल के बाद आयोजित हुआ है। अब 12 साल के बाद 2025 ई. में आयोजित इस पूर्णकुंभ को पुनः 144 साल के बाद आयोजित बताया जा रहा है। वास्तव में यह आम जनता को झूठ बोलकर मेले की ओर आकर्षित करने की एक सोची-समझी रणनीति है।

कुंभ मेले को हजारों वर्ष पुराना और पापनाशक बताकर लोगों को मूर्ख बनाया जाता है और उनकी धार्मिक आस्था के साथ खिलवाड़ किया जाता है। किसी भी धार्मिक या इतिहास की किताब में इसकी कोई प्रामाणिक तिथि का उल्लेख नहीं मिलता है। कुछ धार्मिक किताबों में एक काल्पनिक कहानी का उल्लेख





मिलता है जिसमें देव और दानव मिलकर क्षीरसागर (धरती पर यह कहीं नहीं है) में समुद्र-मंथन करते हैं और इसमें से 44 रत निकलता है, जिसमें से एक रत 'अमृत कलश' होता है। इस अमृत कलश को इन्द्र का पुत्र जयंत लेकर आसमान में उड़ जाता है जिसे पकड़ने के लिए दानव उसका पीछा करते हैं। दोनों एक-दूसरे से अमृत कलश छिनने की कोशिश करते हैं और इस कोशिश में अमृत के चार बूंद धरती पर गिर जाते हैं। इसमें से एक बूंद हरिद्वार, दुसरा नासिक, तीसरा उज्जैन और चौथा प्रयागराज (इलाहाबाद) की नदियों में गिरता है। इसके बाद इन नदियों में सान करने की परंपरा शुरू हो जाती है, लेकिन पहली बार यह मेला कब लगा था, इसके बारे में कहीं कोई जिक्र नहीं है। हाँ, चीनी यात्री हेनसांग ने बताया है कि कन्नौज के शासक राजा हर्षवर्धन (606 ई. से 647 ई. तक) प्रत्येक 5 साल पर नदी के किनारे कुंभ मेले का आयोजन करते थे और अपनी संपत्ति में से कुछ हिस्सा दान देते थे। अतः इसकी शुरूआत गुप्तकाल से मानी जा सकती है। लेकिन इस मेले के साथ उस समय कोई धार्मिक मान्यता नहीं जुड़ी हुई थी। इसे धीरे-धीरे बाद में जोड़ा गया है।

इस कुंभ मेले के बारे में लोगों के अंदर यह विश्वास बैठा दिया गया है कि 13 जनवरी से 26 फरवरी तक जो व्यक्ति प्रयागराज में जाकर गंगा और यमुना नदी (सरस्वती विलुप्त) के संगम पर सान करेगा और दान-दक्षिणा देगा, उसके सारे पाप मिट जाएंगे और उसे मोक्ष (जीवन-मरण के दुख से मुक्ति और आनंद-लोक में प्रवेश) की प्राप्ति होगी। प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में कोई-न-कोई गलती करता ही है, जिसके पीछे कोई-न-कोई सामाजिक कारण होता है, लेकिन उसकी मानसिक स्थिति ऐसी होती है कि वह इस चीज को समझ नहीं पाता है, इसलिए भयवश वह कुंभ सान करने चला जाता है। कार्ल मार्क्स ने कहा था कि धर्म हृदयहीन संसार का

हृदय है और आत्माहीन परिस्थितियों की आत्मा। आज एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के दुख-सुख का सहभागी नहीं है, इसलिए लोगों की आस्था धर्म में बनी हुई है। लेकिन अंततः मार्क्स का यह कहना सही ही है कि धर्म एक अफीम है, क्योंकि यह मनुष्य की तर्क-शक्ति को खत्म कर उसे विवेकहीन बना देता है। आज कुंभ में करोड़ों लोगों की जो भीड़ पहुंच रही है, उसके पास सोचने-समझने वाला अपना दिमाग नहीं है। भाजपा जैसी राजनीतिक पार्टियों, हिंदू संगठनों के धर्माधिकारियों और गोदी मीडिया ने जो प्रचार किया है, उस पर बिना विचार किए लोग कुंभ सान के लिए दौड़ पड़े हैं। 29 जनवरी और 15 फरवरी की भगदड़ में मरे लाशों को देखकर भी उनकी आंखें नहीं खुली हैं। वहां लोग नाले से बहकर गंगा में मिलने वाले गंदे पानी में भी सान कर रहे हैं। सेंट्रल पोल्यूशन कंट्रोल बोर्ड के अनुसार संगम का पानी पूरी तरह से प्रदूषित हो चुका है और उसमें सान करना बीमारी को दावत देने के समान है, फिर भी लोग नहाने के लिए उतारते हो रहे हैं। लोग थोड़ी-सी भी बुद्धि नहीं लगा रहे हैं कि यदि हजारों वर्ष पहले गंगा में अमृत (इसका कोई प्रमाण नहीं है) की एक बूंद गिरी भी होगी, तो वह बहकर समुद्र में कब की मिल गयी होगी। गंगा एक प्रवाहित नदी है और इसका जल कहीं ठहरता नहीं है, तो अमृत का एक बूंद कैसे ठहरेगा। आज लोगों की बुद्धि को इतना कुंद कर दिया गया है कि लोग इतनी सामान्य-सी बात भी नहीं समझ सकते हैं। यदि कुछ लोग समझते भी हैं, तो डरकर बोलते नहीं हैं। आज धर्म की आलोचना करना मौत को दावत देने के समान हो गया है। ऐसी विपरीत सामाजिक परिस्थिति में कौन अपनी जान हथेली पर लेकर धार्मिक अंधविश्वास के खिलाफ बोलेगा।

कुंभ मेले को बढ़ावा देने के पीछे आर्थिक कारण भी है। आज ब्राह्मणवाद ने पूजीवाद के साथ गठजोड़ कायम

कर रखा है। इस ढंग के धार्मिक आयोजन से बाजारवाद को फलने-फूलने का अवसर मिलता है। वैसे कहने के लिए तो हमारा देश धर्मनिरपेक्ष है, लेकिन इस मेले के लिए केन्द्र और उत्तर प्रदेश की सरकार ने 7,500 करोड़ का बजट आबंटित किया है। इसमें धार्मिक संस्थाओं से ज्यादा राज्य की भूमिका है। उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री आदित्यनाथ ने खुद लोगों को मेले में आने के लिए कहा है। वे खुद भी अपने मंत्रिमंडल के साथ वहां गए हैं। प्रधानमंत्री समेत अन्य मंत्री, सांसद और विधायक भी जा चुके हैं। इलाहाबाद में होटल, रेस्टोरेंट्स, खाने-पीने की वस्तुएं काफी महंगी हो चुकी हैं। कुछ लोग 1000 रुपए लेकर डिजिटल सान करवा रहे हैं। हवाई जहाज का किराया कई गुणा बढ़ चुका है। आम जनता को पूजीपति दोनों हाथों से लूट रहे हैं।

इस कुंभ के पीछे भाजपा-आरएसएस की सोची-समझी रणनीति काम कर रही है। वे इस धार्मिक आयोजन का राजनीतिक इस्तेमाल करना चाहते हैं। वे हिन्दू मतदाताओं को अपनी ओर खींचना चाहते हैं। वे भारत को हिंदू राष्ट्र बनाने के अपने एजेंट्स पर काम कर रहे हैं। वे लोगों के अंदर धार्मिक उन्माद पैदा कर हिंदू-मुस्लिम दंगा करवाना चाहते हैं। उनका 'बटेंगे तो कटेंगे' का नारा वास्तव में समाज को बांटकर केवल हिंदुओं को एकजुट करने का नारा है, जिससे धार्मिक सौहार्द बिगड़ेगा और लोग धर्म के नाम पर झागड़ा करेंगे। कुंभ मेले में मुस्लिम दुकानदारों को दुकानें लगाने नहीं देने के पीछे भी यही मंशा है। अतः हमें भाजपा की 'महाकुंभ की राजनीति' को भी समझना चाहिए, ताकि यह 'मृत्युकुंभ' न बन जाए। एक बाबा धीरेन्द्र शास्त्री ने कुंभ न आनेवाले लोगों को देशब्रोही और भगदड़ में मरनेवाले लोगों को मोक्ष मिल जाने की घोषणा कर इसकी शुरूआत कर दी है।

— इन्द्रजीत कुमार

Oliver Twist

The Dark Side of 19th Century England

Oliver Twist was the second out of 13 novels written by Charles Dickens. Through his novel, Dickens satirizes the appointment of children in workhouses, the presence of street children, and domestic violence. It was published serially between 1837 and 1839. It is also known as "Oliver Twist or Parish Boy's Progress."

Life at a workhouse

The novel throws light on the life of Oliver, a young boy living in the workhouse. He is an orphan, and nothing much is known about his parentage. The novel opens with Oliver's mother (Agnes Fleming) giving birth to him and passing away. He is then left in foster care for some time, and when he attains an appropriate age of about 9 years, he is sent to the workhouse. The children in the workhouse are malnourished as they are given very little or no food. After staying six months at a workhouse and experiencing extreme hunger, he becomes a part of a game. All the boys living in the workhouse draw lots, and the loser would go and ask for another portion of gruel (chicken broth). Oliver also goes to Mr. Bumble and asks for more, "Please, sir, may I have some more?" To which Mr. Bumble scoffs and says, "More? What do you mean more? You have already received your allotted portion, boy. Do you not understand the rules of this establishment?" Mr. Bumble denies another portion and calls Oliver a pauper. Thus, Oliver and many other boys are starved and asked to keep a check on their stomachs.

Mr. Bumble represents the middle class in the Victorian era, who is also suffering at the hands of the system. He turned his suffering into torture for the young boys and girls at the workhouse. He doesn't utilize the funds received for the so-called welfare of the children. Similarly, Mr. Sowerberry complains about the meager amount received to maintain the workhouse.

Oliver's story is said to be inspired by the life of

Robert Blincoe, a former child laborer and a writer. Blincoe was born in the year 1792, and nothing much is known about his parentage. He was taken under the care of the parish, and as a part of the indenture training, he, along with 70 other children, boys and girls, was sent to a cotton factory to undertake training. These children traveled by cart five days a week and worked for nearly 14 hours a day. During this period, the girls were taught to



make lace and the boys were taught to make hosiery. At the age of seven, Blincoe nearly lost his finger while working as a mule scavenger (a mule scavenger was trained to clear the loose cotton from the frame of the machine while it was still working). The food that was given to them was porridge and black bread. These children often felt suicidal and even tried to escape the hardships of the workhouse.

Presence of Street Children

When Oliver escapes from Mudfog (a fictional town) and flees to London, he meets Jack Dawkins, who calls himself "the artful dodger." He is an apprentice to Fagin, a criminal who trained young boys and girls to pickpocket. These children turn into hardened criminals and are treated like one. The artful dodger also meets the same fate, as when he is caught, he is exiled to Australia (it was a very common practice of those days to send offenders into exile to a far-off country).

Another example of neglected childhood is from the story "The Little Match Girl" by Hans Christian Andersen. This story is set in the mid-19th century. Where a little girl could be seen walking around the streets of London trying to sell matchboxes. She is pale, with no cap to cover her head and no shoes on her feet. She is hungry and cold. She spends the entire day and the evening trying to convince the hard-hearted people to buy a matchbox from her. She fails miserably and cannot go back to her home as she is afraid of her father. This little girl dies of extreme cold and hunger. The next morning, her dead body is discovered, and people express their sympathy through words and not by their actions.

Love above hatred

As the novel progresses, we see that Oliver receives kindness for the first time. His first benefactor, Mr. Brownlow, takes care of Oliver while he faints in the magistrate's office (after he is caught for being a part of the robbery). He recovers but is kidnapped by Bill Sikes and Nancy to be taken back to Fagin's lair. Oliver is taken to rob a house, but the robbery fails, and Oliver is wounded and left in the care of Ms. Rose and Mrs. Maylie. Oliver recovers under the care and wins over with his truthfulness and innocence.

Domestic Violence

Nancy, who feels guilty about her role in Oliver's

kidnapping, meets Maylies and keeps a check on Oliver's welfare. She is discovered meeting Maylies and is brutally beaten by Sikes (her abusive boyfriend). She succumbed to her injuries and died in a prayerful pose.

Hope above despair

As the novel progresses, we are introduced to Monks, a sickly criminal. He suddenly starts taking an interest in Oliver's life and joins hands with Fagin. It is later discovered that he is Oliver's half brother and wants to take over his half fortune. Oliver willingly gives up his half of the fortune and lives happily as Mr. Brownlow's adopted son. Ms. Rose (Oliver's maternal aunt) marries Henry Maylie. Mrs. and Mr. Bumble are sentenced to live like the inmates of the workhouse. Bill Sikes and Fagin both receive the punishment for their crimes.

Through his novels, Dickens' has, from time to time, satirized the evils of society. He has openly criticized the labor laws in those times, which enabled the factory to employ a child as young as 5 years to be employed. Though Dickens' highlighted these issues nearly 200 years ago, these problems still exist.

The largest involvement of child labor is in the chocolate industry. There were child laborers found at the cocoa farms in Cameroon, Guinea, and Nigeria. The majority of the cases are from Ivory Coast and Ghana.

Nearly 2.1 million children in Ghana and Ivory Coast are involved in the cocoa farm, which supplies the cocoa to companies like Hershey's, Mars, and Nestle. These children who are surrounded by extreme poverty are forced to work under harsh conditions.

Similarly in India, there were children involved in fireworks factories of Sivakasi (Tamil Nadu) in many small and big factories. Children as young as 5 years were employed at silk factories in Karnataka. Definitely with the involvement of the NGO's, the conditions have improved, but still there is a lot to be done.

In conclusion I would like to say, whether the centuries changed the treatment of children remained same . The children came out of the workhouses to be exploited everywhere.

— Tripti

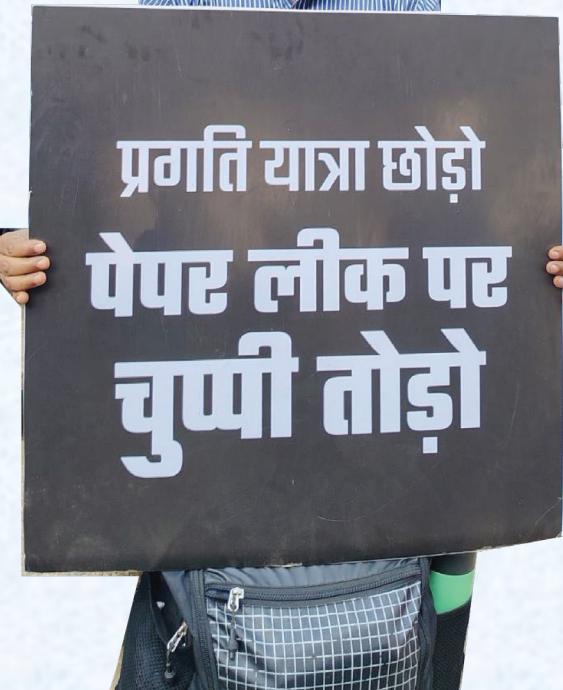
देश में चल रहे छात्र आंदोलनों की रिपोर्ट

बिहार में बीपीएससी छात्रों का आंदोलन-बिहार लोक सेवा आयोग (बीपीएससी) ने 70वीं संयुक्त (प्रारंभिक) परीक्षा 13 दिसम्बर, 2024 को आयोजित किया था जिसमें 3 लाख 25 हजार अभ्यर्थियों ने परीक्षा दी थी। इस परीक्षा में पटना के बापू सभागार में परीक्षार्थियों को आधे घंटे देर से प्रश्न पत्र दिया गया था, जिसमें से कुछ में सील पैक प्रश्न पत्र फटा हुआ था। छात्रों ने इसकी शिकायत की, तो प्रशासन ने उनकी बातों पर ध्यान नहीं दिया और अपनी मनमानी करते रहे। छात्रों को परीक्षा में धांधली और पेपर लीक होने का संदेह हुआ। फलतः उन्होंने परीक्षा देने से इंकार कर दिया और परीक्षा केंद्र से बाहर निकल गये। छात्र बाहर निकल कर जब विरोध-प्रदर्शन कर रहे थे, तो पटना के एसडीएम चंद्रशेखर सिंह ने एक छात्र को जोरदार तमाचा मार दिया। इसके बाद अगले दिन से छात्रों ने परीक्षा को रद्द कर पुनः परीक्षा करवाने के लिए गर्दनीबाग धरना स्थल पर विरोध करना शुरू कर दिया, लेकिन बीपीएससी प्रशासन और सरकार ने उनकी मांगों पर ध्यान नहीं दिया। जब उन्होंने जुलूस निकालना चाहा, तो उन पर पुलिस ने लाठी चार्ज कर दिया, जिसमें कई छात्र लाठ लायल हो गये थे। इस बीच एक छात्र ने आत्महत्या भी कर ली थी। इसके बाद पटना के गांधी मैदान में गांधी मूर्ति के पास बड़ा विरोध-प्रदर्शन हुआ, जिसमें हजारों छात्र-छाताओं और विभिन्न संगठनों के छात नेता भी उपस्थित रहे। इसमें हमारे 'भगत सिंह स्टूडेंट & यूथ फ्रंट' के साथी भी थे। इसी दिन शाम में छात्रों का जुलूस जब जेपी गोलंबर से आगे बढ़ने वाला था, तो पुलिस ने लाठीचार्ज कर दिया। पुलिस ने बड़ी बेरहमी से छात-छाताओं को पीटा और उन पर एफ.आई.आर. दर्ज किया। पुलिस दमन और सरकार की लापरवाही के कारण आंदोलन का स्वरूप व्यापक हो गया और जगह-जगह विरोध-प्रदर्शन किये गये। छात्रों ने बिहार बंद किया और हाई कोर्ट में भी अपील दायर की। छात्रों की मांग थी कि 13 दिसम्बर की परीक्षा में बड़े पैमाने पर धांधली हुई है, इसलिए उसे रद्द कर दी जाए और पुनः परीक्षा कराई जाए। बीपीएससी

के चेयरमैन परमार रवि मनुभाई ने तानाशाही रवैया अपनाते हुए छात्रों की बात नहीं मानी। वे छात्रों से ही सबूत देने की बात करते रहे, जबकि सबूत परीक्षा केंद्र पर लगे सीसीटीवी कैमरे में कैद था जिसे वे जानबूझकर पब्लिक में करना नहीं चाहते थे, क्योंकि इससे उनकी पोल खुल जाती। द्रूपरे सेटरों के छात्रों ने भी धांधली का आरोप लगाया था, लेकिन उस पर भी ध्यान नहीं दिया गया। छात्रों के लगातार विरोध-प्रदर्शन के बावजूद भी 4 जनवरी को केवल बापू सभागार के परीक्षार्थियों की परीक्षा 22 अलग-अलग सेटरों पर ली गई और इस तरह से परीक्षा का

कि विज्ञापन के नियमों के खिलाफ था। बीपीएससी ने आनन-फानन में 23 जनवरी को परीक्षा का परिणाम घोषित कर दिया जिसमें 21,581 छात्रों को सफल घोषित किया गया। इसके बाद छात्रों का यह आंदोलन ठंडा पड़ता गया और अब कुछ छात्रों की गिरफ्तारी के बाद यह लगभग समाप्त हो चुका है।

जामिया मिलिया के छात्रों का विरोध-प्रदर्शन 15 दिसम्बर, 2024 को जामिया मिलिया के छात्रों ने 'जामिया रजिस्टेंस डे' मनाया था, जो 2019 में नागरिकता संशोधन कानून (सी.ए.ए.) के द्वारा जामिया के छात्रों पर हुए बर्बाद पुलिस दमन के खिलाफ था। 2019 में एन.आर.सी. और सी.ए.ए. के खिलाफ पूरे देश भर में आंदोलन हुआ था। इस आंदोलन में जामिया मिलिया के छात-छाताओं ने बढ़-चढ़कर भाग लिया था। उनके प्रतिरोध को कुचलने के लिए केन्द्र की मोदी सरकार के इशारों पर दिल्ली पुलिस मास्क लगाकर जामिया के कैपस में घुसी थी और होस्टल से लेकर लाइब्रेरी तक में बैठकर पढ़ाई कर रहे छात्रों पर बर्बादापूर्वक लाठीचार्ज किया था। सरकार और दिल्ली पुलिस की इसी तानाशाही को याद करते हुए जामिया के छात प्रति वर्ष 15 दिसम्बर को विरोध-प्रदर्शन आयोजित करते रहे हैं। उन्होंने इस बार भी ऐसा ही किया, लेकिन दिल्ली में भाजपा की सरकार बनते ही उन पर कार्रवाई शुरू हो गई। शांतिपूर्ण तरीके से चल रहे विरोध-प्रदर्शन को पुलिस ने होने नहीं दिया और 20 छात्रों को उठाकर ले गयी। बाद में छात्रों के दबाव पर उन्हें छोड़ा गया, लेकिन इस विरोध-प्रदर्शन के लिए विश्वविद्यालय प्रशासन ने लगभग 10 छात्रों पर अनुशासनात्मक कार्रवाई के नाम पर उन्हें विश्वविद्यालय से निष्कासित कर दिया और कैपस में आने पर प्रतिबंध लगा दिया। इसके अलावा विरोध-प्रदर्शन में शामिल होने वाले अन्य छात-छाताओं के घर पर फोन करके उनके अभिभावकों को डराया-धमकाया गया। हमें जामिया विश्वविद्यालय प्रशासन के इस गैर लोकतांत्रिक कार्रवाई की घोर भर्त्सना करनी चाहिए और छात्रों के विरोध-प्रदर्शन के जनवादी अधिकारों की वकालत करनी चाहिए। विश्वविद्यालय के पढ़े-लिखे छात-छाताओं पर जब इस तरह की तानाशाही की जाएगी



नॉर्मलाइजेशन (किसी परीक्षा को कई शिफ्ट में या कई दिनों में आयोजित किया जाना) कर दिया, जो



और उनके अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन किया जाएगा, तो हम किस मुँह से कहने के योग्य होंगे कि हम एक लोकतांत्रिक देश में रह रहे हैं।

KIIT विश्वविद्यालय में नेपाली छात्रों की मौत

उड़िसा के भुवनेश्वर में स्थित कलिंग इंस्टीट्यूट ऑफ इंडस्ट्रीयल टेक्नोलॉजी (KIIT) विश्वविद्यालय में 16 फरवरी को नेपाल की रहनेवाली बी-टेक थर्ड ईयर की छात्र प्रकृति लमसल ने उसी विश्वविद्यालय में पढ़नेवाले एक छात्र के प्रताङ्गित करने पर आत्महत्या कर ली। वह छात्र प्रकृति लमसल का व्यॉयफ्रेंड था, जो उसे ब्लैकमेल कर रहा था। प्रकृति लमसल ने उसके खिलाफ विश्वविद्यालय प्रशासन से शिकायत भी की थी, लेकिन उसकी शिकायत पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। जब मानसिक प्रताङ्गना से तंग आकर उसने आत्महत्या कर ली, तो विश्वविद्यालय प्रशासन ने उसकी हत्या को छूपाना चाहा, लेकिन अन्य नेपाली छात्र-छात्राओं ने विरोध-प्रदर्शन करना शुरू कर दिया। विश्वविद्यालय प्रशासन ने उसके व्यॉयफ्रेंड पर कार्रवाई करने की बजाय नेपाली छात्राओं को ही धमकाना शुरू किया। जब नेपाल के प्रधानमंत्री के पी. पी. शर्मा ओली ने हस्तक्षेप किया तो यह राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा का विषय बन गया। इसके बाद कुछ लोगों को गिरफ्तार किया गया और विश्वविद्यालय प्रशासन ने सार्वजनिक माफी मांगी। इस पर अभी कार्रवाई जारी है। सवाल है कि आखिर इस ढंग की घटनाएं घटती क्यों हैं और विश्वविद्यालय प्रशासन इसे छिपाना क्यों चाहता है? विश्वविद्यालय प्रशासन को किसी की जान से ज्यादा अपनी छवि प्यारी है, इसलिए वह इतनी बड़ी घटना को छिपाने की कोशिश करता है।

उपर्युक्त तीनों रिपोर्ट के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हमारे देश में शिक्षा व्यवस्था का बड़ा बुरा हाल है। बीपीएससी परीक्षा की तरह कितनी ही परीक्षाएं होती हैं जिसमें धांधली और भ्रष्टाचार के आरोप लगते हैं। जब छात्र सड़क पर उतर कर सरकार और शैक्षणिक संस्थानों के खिलाफ विरोध-प्रदर्शन करते हैं, तो पुलिस की मदद से आंदोलनों को दबा दिया जाता है। जैसे जामिया मिल्लिया विश्वविद्यालय के छात्रों का दमन किया गया है। आज भी कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में नये छात्रों की रैगिंग की जाती है। धन्ना सेठों के बच्चे खुलेआम गुंडागर्दी करते हैं और लड़कियों को इमोशनल ब्लैकमेल करते हैं। जैसे प्रकृति लमसल के साथ किया गया। यह सोचने वाली बात है कि छात्रों पर इतने जुन्म ढाए जा रहे हैं फिर भी किसान आंदोलन की तरह एक बड़ा छात्र-आंदोलन हमारे देश में क्यों नहीं हो पा रहा है, जबकि अभी कुछ ही समय पहले हमारे पड़ोसी देश बांग्लादेश में छात्रों का एक बड़ा विरोध-प्रदर्शन

हुआ था, जिसने शेख हसीना की सरकार को गिरा दिया और उन्हें बांग्लादेश छोड़कर भागना पड़ा। वहां के छात्र अमीर घरानों के बच्चों को दिए जाने वाले आरक्षण से खफा थे, क्योंकि मजदूर वर्ग के बच्चे पढ़-लिखकर भी नौकरी से बाहर थे और बेरोज़गारी का दंश झेल रहे थे।

हमारे देश का युवा वर्ग भी आज सबसे ज्यादा बेरोज़गारी का दंश झेल रहा है, लेकिन बेरोज़गारों की यह युवा शक्ति राजनीति से बेखबर रहकर सांप्रदायिक हिंदू-मुस्लिम कट्टरपंथी ग्रुपों में विभाजित है। शिक्षा के नाम पर रटू तोता बनकर दिन-रात केवल परीक्षा की तैयारी में लगे रहना और देश-दुनिया के हालातों से बेखबर रहना, इनकी नियति बन गयी है। ये शासक वर्ग की राजनीति के जाल में फंसे हुए हैं और मजदूर वर्ग की राजनीति से इन्हें कुछ लेना-देना नहीं है। आजकल इनके आदर्श कोई शिक्षाविद्, महान नेता, सामाजिक कार्यकर्ता या दार्शनिक नहीं, बल्कि कोचिंग संचालक, सांप्रदायिक नेता और पूँजीपति बन गये हैं, जिन्हें मजदूर वर्ग के बच्चों को वास्तविक शिक्षा देने से कोई मतलब नहीं है। आजकल के कोचिंग संचालक एक क्लास में सैकड़ों छात्रों को बैठाकर हर विषय के मुख्य-मुख्य बिंदुओं को उन्हें रटवाते हैं और उनसे हजारों रुपए ऐंठते हैं। सरकारी या प्राइवेट स्कूलों में मैट्रिक या इंटर की पढ़ाई हो रही है या नहीं, इससे इन्हें कोई मतलब नहीं होता है। यदि स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में ठीक से पढ़ाई होने लग जाए, तो इनका धंधा बंद हो जाएगा। आज बड़े-बड़े पूँजीपति और नेता प्राइवेट स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय खोलकर शिक्षा को बिकाऊ माल बनाए हुए हैं। इसीलिए ये शिक्षा माफिया जानबूझकर छात्र-छात्राओं को सरकारी स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में जाने नहीं देना चाहते हैं और जल्दी नौकरी दिलवाने के नाम पर ठगी करते हैं और छात्रों को गलत दिशा में ले जाते हैं। बीपीएससी छात्रों के आंदोलन में भी कई कोचिंग संचालकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और छात्रों को गुमराह किया। जामिया के छात्रों के खिलाफ हुई कार्रवाई के पीछे हिंदू फासीवादी संगठनों का हाथ है। प्रकृति लमसल की हत्या के पीछे हिंदू पूँजीपतियों का हाथ है। भारतीय छात्रों को अपने आंदोलन को व्यापक बनाने के लिए शिक्षा और बेरोज़गारी से जुड़े मुद्दों को भी शामिल करना चाहिए। जब तक हम इस पूँजीवाद की पूरी शिक्षा व्यवस्था के खिलाफ लड़ने के लिए तैयार नहीं होंगे, तब तक हमें ऐसी ही समस्याओं और दुर्घटनाओं का सामना करता रहना पड़ेगा।

— Ground Report, Humari Aawaz

शहीद-ए-आजम भगत सिंह: संघर्ष से सीख और आज की चुनौतियां

शहीद-ए-आजम भगत सिंह का जन्म 27 सितंबर, 1907 को हुआ था। भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को 23 मार्च, 1931 को पांसी दे दी गई थी। शहीद भगत सिंह ने आम जनता, युवाओं और विद्यार्थियों के लिए जो पत्र लिखा था, उसका उद्देश्य समाज में वैज्ञानिक चेतना पैदा करना था और हर तरह के शोषण एवं अन्याय के खिलाफ संघर्ष के लिए तैयार करना था। आज, उनके विचारों को जानना और समझना पहले से कहीं अधिक आवश्यक है, क्योंकि हमारे सामने बेरोजगारी, सांप्रदायिकता, शिक्षा और समाचार मीडिया का निजीकरण जैसी गंभीर समस्याएं हैं।

विद्यार्थी और राजनीति (1928)

अक्सर यह सुना जाता है कि विद्यार्थियों को राजनीतिक कामों में हिस्सा नहीं लेना चाहिए। जिन नौजवानों को कल देश की बागड़ोर संभालनी है, उन्हें आज सोचने और समझने से रोका जा रहा है। यह वही विचारधारा है जो आज शिक्षा को एक व्यापार बना रही है, महंगी होती जा रही शिक्षा को आम छात्रों की पहुंच से दूर कर रही है। शिक्षा, जिसका उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन के लिए चेतना विकसित करना होना चाहिए, आज महज एक उपभोक्ता उत्पाद बनकर रह गई है।

क्या विद्यार्थियों को देश की नीतियों, शिक्षा व्यवस्था, बेरोजगारी और महंगाई के बारे में जानने और इनका हल सोचने का अधिकार नहीं है? अगर नहीं, तो ऐसी शिक्षा व्यर्थ है, जो सिर्फ नौकरी की लाइन में खड़ा करने का काम करे। भगत सिंह ने इसे बहुत पहले ही समझ लिया था कि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य सोचने और बदलाव लाने की क्षमता विकसित करना होना चाहिए।

व्यवहारिक राजनीति क्या होती है?

आज महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू और सुभाष चंद्र बोस के विचारों पर चर्चा तो होती है, लेकिन सरकारों की नीतियों, निजीकरण की लूट और श्रमिकों के अधिकारों पर होने वाले हमलों पर सवाल उठाना कम कर दिया गया है। अखबार और मीडिया, जो कभी जनता की आवाज हुआ करते थे, आज कॉर्पोरेट कंपनियों के हाथों में हैं। यह वही मीडिया है जो बेरोजगारी और शिक्षा के गिरते स्तर की बजाय सांप्रदायिक जहर फैलाने में लगा हुआ है। सवाल यह है कि क्या विद्यार्थियों और नौजवानों को इससे प्रभावित हुए बिना रहना चाहिए?

दुनिया के हर बड़े बदलाव में विद्यार्थियों और नौजवानों की अहम भूमिका रही है। हमें पढ़ाई के साथ-साथ इन मुद्दों की समझ भी विकसित करनी होगी और जब जरूरत पड़े, तो मैदान में उत्तरकर संघर्ष करना होगा।

विद्यार्थियों के नाम पत्र (1929)

आज हम नौजवानों से यह नहीं कह सकते कि वे बम और पिस्तौल उठाएं, लेकिन यह जरूर कह सकते हैं कि वे असली मुद्दों को समझें और उनके खिलाफ आवाज उठाएं। बेरोजगारी आज एक विकराल समस्या बन चुकी है, जिसे सरकारें छिपाने की कोशिश कर रही हैं। बड़ी-बड़ी डिग्रियां लेकर भी युवा सड़क पर भटक रहे हैं, जबकि सरकारी नौकरियां खत्म की जा रही हैं, और निजी क्षेत्र में शोषण

चरम पर है।

सांप्रदायिकता और नफरत की राजनीति, जो भगत सिंह के दौर में भी अंग्रेजों का हथियार थी, आज भी उसी तरह इस्तेमाल की जा रही है। धर्म और जाति के नाम पर लोगों को आपस में लड़ाने का खेल जारी है, जिससे असल मुद्दों से ध्यान हटाया जा सके। मीडिया और समाचार पत्र, जो कभी जनमत तैयार करने का माध्यम थे, अब कुछ बड़े उद्योगपतियों के प्रचार तंत्र बन गए हैं।

पत्रकारिता का असली कर्तव्य शिक्षा देना, लोगों से संकीर्णता हटाना, सांप्रदायिकता मिटाना और जनता को सच बताना है। लेकिन आज का मीडिया कॉर्पोरेट घरानों का गुलाम बन चुका है और आम जनता के मुद्दों पर बात करने से बचता है। हमें इसे पहचानना होगा और अपना स्वतंत्र वैकल्पिक मीडिया विकसित करना होगा।



आज के हालात और हमारा रास्ता

भगत सिंह के विचार आज भी हमें रास्ता दिखाते हैं। उन्होंने कहा था कि जब तक मेहनतकश जनता के पास उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण नहीं होगा, तब तक समानता संभव नहीं है। आज, शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य और मीडिया सभी कुछ निजी हाथों में जाता जा रहा है। सरकारी संस्थानों को बंद किया जा रहा है, ताकि लोगों को महंगी निजी सेवाओं पर निर्भर किया जा सके।

हमें समझना होगा कि यह सिर्फ नीतियों की खामी नहीं, बल्कि पूँजीवादी लूट का हिस्सा है। इसका विरोध करना हमारा कर्तव्य है।

क्या किया जाए?

बेरोजगारी के खिलाफ संगठित होकर हर युवा के लिए रोजगार और उचित वेतन की गारंटी सुनिश्चित करनी होगी। समान और सस्ती शिक्षा के अधिकार के लिए शिक्षा के निजीकरण का विरोध आवश्यक है। समाज को धर्म और जाति के नाम पर बांटने वालों को पहचानकर सांप्रदायिकता के खिलाफ एकजुट होना होगा। साथ ही, कॉर्पोरेट मीडिया के झूठ का सामना करने के लिए जनपक्षीय स्वतंत्र मीडिया को मजबूत करना जरूरी है।

भगत सिंह की उपयुक्त बातों से यह स्पष्ट होता है कि छात्रों और युवाओं को पढ़ाई और काम के साथ-साथ राजनीतिक गतिविधियों पर भी नजर रखनी चाहिए। यह कहना गलत होगा कि अमीरी-गरीबी हमेशा बनी रहेगी। असली सवाल यह है कि मेहनतकश जनता को उसकी मेहनत का पूरा हक कब मिलेगा?

हम सबका हित समान है। इसीलिए जरूरी है कि हम सभी मतभेदों को खत्म कर, आपस में एकजुट होकर अपनी आर्थिक, सामाजिक और हर तरह की बेहतरी के लिए संघर्ष करें। हमें शोषक वर्ग, यानी सत्ता व पूँजीपति वर्ग की नीतियों का पर्दाफाश करना चाहिए और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष तब तक जारी रखना चाहिए, जब तक कि सभी को रोजगार, सस्ती और समान शिक्षा, बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएं और सामाजिक अधिकार प्राप्त न हो जाएं।

— सनी

Humari आवाज़ 1st Anniversary

One Year of Struggle, Learning, and Solidarity

What our readers have to say!



“The editorial, ‘Information is Physical but Its Commodification is Political,’ reshaped my understanding of media control. The way it connects science and politics is something I haven’t seen in a decade.”

— Bharat

"The magazine takes a scientific approach, unlike the opinion-driven mainstream media. Articles are backed by statistics and examples."

— Samhitha, Architect



सबसे पहले हमारी आवाज पत्रिका
को अपने एक वर्ष पूरे होने की
बधाई!

इस पत्रिका के पहले अंक के निकलने से लेकर अब तक के अंक की मैं नियमित पाठिका रही हूँ। यह पत्रिका युवाओं के विचार, संवेदना और सामाजिक ज़िम्मेदारी के दायित्व का बेहतरीन तरीके से निर्वहन कर रही है। इसी तरह इसके निरंतर अग्रगामी होने की मैं शभकामना करती हूँ।

-શિરાર્થી

सभी पाठकों को नीरा नगरकार, नीरा नाम नीला
महाजन है, और जै शुद्धदूत की रहने वाली है। पिछों सब
पर्व से मैं, हमसी डांवावज परिका की पाठिका हूँ। मुझे
परिका पढ़ना बहुत अच्छा लगता है। मैं हमेशा हमेशा, हमारी
आवाज़ परिका का इन्तजार करती है। नीरा शुरू से पढ़ने
में सच्ची है, और अपने रवानी समय में कुछ ना कुछ
पढ़नी रहती है। हमारी आवाज़ परिका स्कूल संघर्ष परिका है।
इस पढ़कर काफी ज्ञान मिलता है, क्योंकि ये जोड़ कर
खरपती है। सोरे लिख बहुत अच्छे लिखते होते। सोरे क्रेस्क
बहुत अच्छी क बारी टीन की जैहन हर स्कूल ओंक में विरचित
वर्ती है। मैं सारी टीन को अपनी श्रीभाग्नामास देती हूँ,
हमारी आवाज़ परिका के स्कूल वर्ष पूरे होने पर।



बीते कुछ महीनों से बतौर पाठक 'हमारी आवाज़' पत्रिका को पढ़ने और कुछ सीखने का एक सुखद अनुभव रहा, यह कहना अतिश्योक्तिपूर्ण न होगा कि अपने पाठक को एक नये ढंग से, नये दृष्टिकोण के साथ, नयी वैचारिक बहस को आगे बढ़ाने में इस पत्रिका की अपनी अहम भूमिका है। मेरी दृष्टि से समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, सामाजिक असमानता, अन्याय तथा महिला, किसान-मजदूर के अधिकारों से जुड़े कई महत्वपूर्ण मसलों पर व्यवहारिक एवं सैद्धांतिक व्याख्या प्रस्तुत करने एवं नवीन वैज्ञानिक दर्शनिक दृष्टिकोणों से विचार विमर्श करने की दिशा में यह बहुत ही महत्वपूर्ण पत्रिका है। आशा है कि भविष्य में शोषण मक्त समाज और राश निर्माण में यह पत्रिका 'मील का पथर' साबित हो।

एक साल परे होने के उपलक्ष्य में पवित्रा को बहुत बहुत बधाई और सभकामनाएं।

१०८

हमारी आवाज पत्रिका के एक वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में सभी साथियों को हार्दिक बधाई! इस पत्रिका से जुड़ने के बाद मेरे जीवन और विचार दोनों में बहुत परिवर्तन हुआ है। मेरे सोचने समझने का दायरा काफी विस्तृत हुआ इसलिए मैं इस पत्रिका और संपादक मंडल को दिल से धन्यवाद देती हूँ। पत्रिका से मुझे आधुनिक वास्तविकता का ज्ञान हुआ व्यक्तिगत तौर पर कहाँ तो मेरा सामाजीकरण भी हुआ। मैं नियमित तौर पर इसकी पाठक बनी रहना चाहती हूँ।

-सप्तमा, सातकोत्तर की छाता.

**Tripti**

Congratulations to the entire Humari Awaaz team on completing one year! From its inception in 2023, the magazine has been a collective effort to raise our voices against injustice and inequality. Being part of this journey has been transformative—I have grown more organized, overcome my fear of public speaking, and deepened my political understanding. Most importantly, working alongside committed comrades has strengthened my resolve. As we move forward, may we continue learning, organizing, and amplifying the struggles of students and youth.

हमारी आवाज पत्रिका के एक वर्ष पूरे होने पर पूरी टीम को बधाई। इस पत्रिका के माध्यम से हमने ऐसे विद्यार्थियों और युवाओं के मुद्दों को आवाज दी है जो मजदूरों, किसानों तथा अन्य मेहनतकश तबके से आते हैं। इस क्रम में हमने उनके खिलाफ बनाई जा रही नीतियों को उजागर करने का प्रयास भी किया है। इस यात्रा में लेखन, अध्ययन और संगठनात्मक कार्यों से सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों को समझने का बहुमूल्य अवसर मिला।

यह सफर न केवल संघर्ष का रहा, बल्कि सीखने और निखरने का भी। हम आगे भी इसी संकल्प के साथ मेहनतकशों के हक की लड़ाई में उनके साथ रहेंगे।

**सन्ति****संजना**

हमारी आवाज की प्रथम वर्षगांठ पर हम सभी उम्मीद और संकल्प से भरे हुए हैं। जब मैं इस पत्रिका से जुड़ी, तो अपने विचारों को व्यक्त करने को लेकर संशय में थी, लेकिन यह केवल एक पाठक भर रहने की यात्रा नहीं रही। इसकी स्थापना और निर्माण में सक्रिय भागीदारी से मुझे अपने विचारों को समझने और प्रकट करने का आत्मविश्वास मिला। साथियों के सहयोग से शोषण, अंधविश्वास और महिलाओं के अधिकारों से जुड़े लेख लिखने का अवसर मिला, जिससे मेरी सौच और समझ का विस्तार हुआ।

यह तो बस शुरूआत है—आगे भी हम नए विचारों और गहरी सामाजिक चर्चाओं को लेकर आगे बढ़ेंगे। हमारा उद्देश्य यही रहेगा कि हमारी आवाज हर छाल की आवाज बने और शोषण मुक्त समाज के निर्माण में अपना योगदान दे।

Editor's Cut

Humari आवाज़ 1st Anniversary

One Year of Struggle, Learning, and Solidarity

सभी साथियों को हमारी आवाज़ की पहली वर्षगांठ पर क्रांतिकारी शुभकामनाएँ! एक एडिटोरियल बोर्ड सदस्य और लेखक के रूप में, मैंने इस पत्रिका को केवल एक प्रकाशन नहीं, बल्कि एक मंच के रूप में देखा है, जो सामाजिक समस्याओं, राज्य की भूमिका, वर्ग-विभाजन और राजनीतिक चेतना की समझ को विकसित करता है।

हमारी आवाज़, जिसे राज्य और पूंजीवाद दबाना चाहते हैं, उसे और बुलंद कर जनता तक पहुँचाना हमारा लक्ष्य है। इस प्रयास में पत्रिका एक सशक्त माध्यम बन रही है। साथियों का योगदान—चाहे लेखन, संपादन, छापाई या आर्थिक सहयोग के रूप में हो—हमारी आवाज़ को और मजबूत बना रहा है।

आशा है कि आने वाले समय में हम इस पत्रिका को और अधिक लोगों तक पहुँचाएंगे और इसे पहले से अधिक प्रभावशाली बनाएंगे!

**विवेक****Laxmi**

Congratulations to Humari आवाज़ team for initiating a magazine that connects politics, society, and students at the grassroots. The editorial team, led by Tripti, has built an incredible space for democratic discussions and decision-making.

Being part of this magazine has transformed my perspective. It has made me not just a writer, but someone responsible for the community I write for. My questions about the world have turned into action, shaping me from a thinker into a practitioner.